International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 8 Issue 4, April- 2018
ISSN(o): 2249-7382 | Impact Factor: 6.939 |**Thomson Reuters Researcher ID: L-5236-2015**

एक्विनास के दार्शनिक चिंतन में विधि की अवधारणा

डॉ. ज़रफिशॉ ज़ैदी
सहायक आचार्य–दर्शनशास्त्र,
एम.एस.जे.स्नातकोत्तर राजकीय महाविद्यालय, भरतपुर

मध्य युग का समस्त यूरोपीय चिन्तन किसी ना किसी प्रकार से कैथोलिक चर्च की मान्यताओं से प्रभावित रहा है। इस युग में ईसाई धर्म के प्रचार व प्रसार से एकेश्वरवाद का सिद्धान्त प्रमुखता से प्रचलित हुआ, जिसकी अभिव्यक्ति एक चर्च, एक राज्य और एक कानून के रूप में हुई।[1] यह कानून मनुष्य द्वारा निर्मित नहीं वरन् विश्व की एकता का ही एक अंश माना गया। इस सिद्धान्त के आधार पर एम्ब्रोस, आगस्टीन तथा ग्रेगोरी आदि ईसाई पादरियों ने सामाजिक व्यवस्था में नैसर्गिक विधि के आदर्श को बनाए रखा, परन्तु ईश्वर को नैसर्गिक विधि का मूल स्रोत माना गया। इस सम्बन्ध में विचारकों की यह मान्यता रही कि धार्मिक दृष्टि से अनुप्राणित विधि राज्य, सरकार और उसके द्वारा बनाई गई विधि से श्रेष्ठ और उत्कृष्ट है तथा उसी का अनुपालन करने से लौकिक व पारलौकिक जगत में अन्तिम लक्ष्य की प्राप्ति सम्भव है। मध्ययुगीन प्रमुख विचारक एक्विनास ने राज्य को लौकिक क्षेत्र में तथा चर्च को पारलौकिक क्षेत्र में सर्वोच्च मानते हुए, सन्तुलित विचारधारा का समर्थन किया। प्राकृतिक विधि विषयक मध्य युग के वैचारिक इतिहास में एक्विनास का विशिष्ट स्थान रहा है। विधि सम्बन्धी उनके विचारउनके मूल दार्शनिक विचार को ही भाँति दो प्रधान सोतों अरस्तु को वैचारिक परम्परा और ईसाई धर्म में आस्था से प्रभावित दिखाई देते हैं। अरस्तु के विचारों से सहमति रखते हुए वह समाज को व्यक्ति के लिए आवश्यक मानते हैं। मनुष्य अपनी सहज प्रकृति द्वारा ही समाज का निर्माण करने में संलग्न होता है अतः एक्विनास के अनुसार सामाजिक जीवन मानवीय प्रकृति पर आधारित होता है। इस प्रकार वह सामूहिक जीवन की आवश्यकता पर बल देते हुए दिखाई देते हैं। उनके लिए समूह का अर्थ है–गाँव, शहर और राज्य । राज्य को वह मनुष्य के शुभ जीवन की प्राप्ति का सक्षम साधन मानते हैं। यद्यपि एक्विनास राज्य को किसी धर्म संस्थान का विभाग नहीं मानते तथा वे सरकार के किसी विशेष प्रारूप का समर्थन नहीं करते तथापि उनका विचार था कि राजतन्त्र एकता के लिए सर्वाधिक उपयुक्त है। फिर अरस्तु की मिश्रित राज्य की कल्पना के आधार पर एक्विनास यह मत भी प्रस्तुत करते हैं कि जनता को सरकार के कामों में सक्रिय भाग लेने का अधिकार है और यदि शासक अत्याचारी है तो जनता उसे पदच्युत करने का पूर्ण अधिकार रखती है।

एक्विनास के समाज और राज्य के उपरोक्त विचारों के आधार पर कहा जा सकता है कि वह

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 8 Issue 4, April- 2018
ISSN(o): 2249-7382 | Impact Factor: 6.939 |**Thomson Reuters Researcher ID: L-5236-2015**

मनुष्य को सामाजिक–राजनैतिक प्राणी के रूप में देखते हैं। मनुष्य के सामाजिक राजनयिक जीवन का प्रत्यय सम्पूर्ण प्रकृति के बारे में उनकी धारणा की विस्तृत योजना का अंग दिखाई देता है। दूसरे, उनके विचारों के आधार पर कहा जा सकता है कि शासक को शासित के हितार्थ कार्य करते रहना चाहिए। एक्विनास के 'सामाजिक राजनयिक जीवन' के प्रत्यय सम्बन्धी विचार से 'जीवन के नियमन की अनिवार्यता' का विचार निगमित होता है और कानून का सम्प्रत्यय इस विचार से संलग्न दिखाई देता है। एक्विनास कानून को इस प्रकार परिभाषित करते हैं, ''कानून, सामान्य षुभ के लिए प्रख्यापित विवेक का आदेष है जो उसके द्वारा निर्मित है जिसे समाज के हितों की चिन्ता है।''[2]

एक्विनास के कानून सम्बन्धी विचार का आरम्भ बिन्दु ईसाई धर्म का वह मूल सिद्धान्त है जिसके अनुसार समस्त विष्व दैवी षक्ति में प्रषासित है, जिसे एक्विनास दैवी विधि (ैनू वि ळवक) कहते है।[3]यह षाष्वत विधि सभी वस्तुओं को उनके लक्ष्यों की प्राप्ति में निर्देषित करती है। निस्संदेह यह सर्वश्रेष्ठ विधि है परन्तु सम्पूर्ण दैवी विधि का ज्ञान प्राप्त करना मनुष्य की सामर्थ्य के बाहर है। यद्यपि सम्पूर्ण दैवी विधि का ज्ञान केवल ईष्वर को होता है तथापि बौद्धिक प्राणी होने के नाते मनुष्य दैवी विधि के एक अंष को अपनी तर्कषक्ति के द्वारा जानता है जिसे एक्विनास नैसर्गिक विधि की संज्ञा देते हैं। इस प्रकार एक्विनास के मतानुसार प्राकृतिक कानून मानवीय विवेक द्वारा ज्ञात होते है और मानवीय प्रवृत्तियों पर आधारित होते हैं। मनुष्य में षुभ करने और अषुभ से बचने की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है जो प्राकृतिक विधि का आधारभूत सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त से अन्य प्राकृतिक कानून निसृत होते हैं। जैसे सन्तान उत्पन्न करना और अज्ञानता से बचना, ईष्वर की सत्यता को जानना, समाज में रहना, मानवीय जीवन की रक्षा करना और उसके मार्ग में आई बाधाओं को दूर करना आदि। मनुष्य को विवेक के अनुसार कार्य करना चाहिए, इस प्राकृतिक कानून के साथ हम इस प्राकृतिक कानून को स्वीकार करते हैं कि ऋण चुकाना चाहिए, परन्तु यदि किन्हीं परिस्थितियों में उस धन का प्रयोग हमारे देष के विरूद्ध युद्ध करने में होगा, तब इस नियम का पालन करना अनुचित और विवेकहीन होगा। प्राकृतिक कानूनों के अस्तित्वको स्वीकार करते हुए एक्विनास धार्मिक विधि के स्वरूप पर भी पर्याप्त विचार करते हैं। उनके अनुसार धार्मिक विधि भी दैवी विधि है, जो दैवी ग्रन्थों में वर्णित और दैवी प्रकाशन द्वारा अवतरित है। धार्मिक विधि पूर्ण रूप में प्राकृतिक विधि नहीं है, परन्तु प्राकृतिक विधि के विपरीत भी नहीं है। यह विधि मानवीय आधार के लिए नियम प्रतिपादित करती है।

एक्विनास द्वारा दैवी विधि, प्राकृतिक विधि और धार्मिक विधि के सम्प्रत्ययों की व्याख्या के आधार

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 8 Issue 4, April- 2018
ISSN(o): 2249-7382 | Impact Factor: 6.939 |**Thomson Reuters Researcher ID: L-5236-2015**

पर संक्षेपतः यह कहा जा सकता है कि सम्पूर्ण जगत एक ईश्वरीय नियामक व्यवस्था से आबद्ध है। इस सम्पूर्ण ईश्वरीय नियामकता का ज्ञान प्राप्त करना सम्भव नहीं है, परन्तु मनुष्य इस व्यवस्था के कुछ नियमों को विवेक के द्वारा (प्राकृतिक विधि) और कुछ नियमों को दैवी प्रकाशन के द्वारा (धार्मिक विधि) ग्रहण करता है। यहाँ पर यह प्रश्न उठना स्वाभविक है कि एक्विनासीय दृष्टिकोण से फिर मानवीय विधि की आवश्यकता क्या है? इस प्रश्न पर विचार करते हुए एक्विनास मानते हैं कि मनुष्य स्वभावतः दो प्रकार के होते हैं। एक प्रकार के वे मनुष्य जो अपनी प्रकृति, पालन–पोषण या दैवी कृपा के कारण 'शुभत्व' के प्रति आकर्षित होते हैं। इनको मार्गदर्शित (प्राकृतिक विधि व धार्मिक के द्वारा) करना ही पर्याप्त होता है। दूसरी प्रकार के वे मनुष्य जिनमें अशुभ के प्रति लगाव होता है। यदि उन्हें अशुभ कार्य करने से नहीं रोका गया तो सम्पूर्ण समाज को इसके दुष्परिणाम भुगतने होंगे। अतः ऐसे व्यक्तियों को कुछ आबंधक नियमों के द्वारा सत्मार्ग पर चलने का अभ्यास कराया जाता है। मानवीय समाज व राज्य द्वारा निर्मित यह आबंधक नियम ही मानवीय कानून है, जो मनुष्य के शांतिमय व सद्गुणी जीवन के लिए अनिवार्य है। मानव द्वारा निर्मित कानूनों के बारे में एक्विनास का ऐसा विश्वास है कि वही मानवीय कानून वैध होते हैं जो न्याय की धारणा पर आधारित होते हैं, जो कानून न्याय की धारणा से प्रतिकूल है, वह कानून नहीं अपितु कानून की विकृति है। मानवीय कृत्यों के सम्बन्ध में न्याय विवेक के नियमों का पालन करना है और जैसा कि सुविदित है कि मानवीय विवेक का प्रथम नियम, एक्विनास दृष्टि में प्राकृतिक कानून है। तब यह स्पष्ट हो जाता है कि मानव निर्मित कानुन प्राकृतिक कानूनों से संगतता या असंगतता से क्रमशः वैध या अवैध होते हैं। यहाँ प्राकृतिक कानूनों से 'सामान्य नियमों' का और मानव निर्मित कानुनों से 'विशिष्ट नियमों' का अवबोध होता है। उदाहरणार्थ 'मनुष्य का नुकसान नहीं करना चाहिए' इस प्राकृतिक कानून से यह मानव निर्मित कानून निसृत हुआ होगा कि 'हत्या मत करो'। फिर प्राकृतिक कानून से ही यह भी ज्ञात होता है कि इस नियम का उल्लंघन करने पर व्यक्ति दण्ड का भागीदार होगा, परन्तु मनुष्य यह निर्धारित करता है कि किन्हीं विशिष्ट परिस्थितियों में इस नियम का उल्लंघन करने पर क्या और कितना दण्ड दिया जाए। अब मानव निर्मित कानून और प्राकृतिक कानून के अन्तर्सम्बन्धों पर एक्विनास के विचार स्पष्ट हो जाते हैं कि सामान्य शुभ की प्राप्ति हेतु सामाजिक जीवन के नियमन के लिए मानव निर्मित कानून प्राकृतिक कानूनों के आधार पर निगमित करने चाहिए।

विधि विषयक उपरोक्त एक्विनासीय विचारों से यह निष्कर्ष निकलता है कि वह प्राकृतिक विधि सिद्धान्तों को मुख्यतः तीन प्रवर्गों में विभक्त करते हैं–

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 8 Issue 4, April- 2018
ISSN(o): 2249-7382 | Impact Factor: 6.939 |**Thomson Reuters Researcher ID: L-5236-2015**

(1) मानव की सहज प्रकृति पर आधारित प्राकृतिक कानून, जिनमें मूल कानून 'शुभ करो और अशुभ से बचो' है।

(2) प्रथम प्रवर्ग में निर्दिष्ट नियमों पर आधारित धार्मिक विधि (बाइबिल के दस आदेश)।

(3) प्रथम एवं द्वितीय वर्गों के नियमों को दृष्टिगत रखते हुए न्याय के सिद्धान्त पर आधारित मानव निर्मित कानून।

3. अब हम नैसगिक विधि सिद्धान्त की प्रमुख विशेषताओं का आकलन करें तो यह कह सकते हैं कि विधि विषयक नैसर्गिक वैचारिक परम्परा एक व्यवस्थित तन्त्र के रूप में विकसित नहीं हुई बल्कि अनेक विधि दार्शनिकों के विचारों में विभिन्न अर्थ एवं संदर्भ में प्रयुक्त 'नैसर्गिक विधि सिद्धान्त' किसी आदर्श कानून के अस्तित्व तथा उसके ज्ञान की सम्भावनाओं के रूप में निरूपित हुआ है, जिसमें मानवीय आचरण के मापदण्डों और प्रकृति के संचालन के नियमों को एक ही पदावली में अभिव्यक्त करने का प्रयास किया गया है। इस प्रकार नैसर्गिकवादियों की यह मूल मान्यता रही है कि 'निसर्ग में जो है' उसको ही लेकर निसर्ग 'अवश्यकरणीय कर्म' के रूप में मानव को आदेश देता है। मानवीय विवेक है या तथ्यता के अनेक उदाहरण प्रकृति में देखता है, जिससे 'ऐसा होना चाहिए' रूपी कर्तव्य का अवबोध होता है। 'है' का अस्तित्व अनिवार्य रूप से 'चाहिए' को आपदित करता है, नैसर्गिकवादियों की यह आधार स्वीकृति है।

जैसा कि सुविदित है कि प्लेटो और उसके परवर्ती चिन्तन में हमें शाश्वत नैतिक मूल्यों और कानून के मध्य अनिवार्य सम्बन्ध दिखाई पड़ता है। शाश्वत नैतिक मूल्यों में सर्वाधिक प्रमुख मूल्य न्याय है। इसलिए इस विचारधारा में 'न्याय से अनुरूपता' कानून का अनिवार्य लक्षण बन जाता है। यदि इस मूल्य को कथित करने वाले नियमों और प्रचलित कानून के मध्य विरोध की स्थिति हो तो यह नैसर्गिक नियम कानून की वैधता को चुनौती दे सकते हैं। अतः प्राकृतिक विधि सिद्धान्त मानव द्वारा निर्मित कानूनों की वैधता की कसौटी कहे जा सकते हैं।

नैसर्गिक नियमों का दूसरा सर्वाधिक प्रमुख लक्षण यह है कि यह नियम मानवीय इच्छा पर आधारित नहीं है, अपितु विवेक का उत्पादन है। तब फिर केवल वही नियम कानून नहीं है जो राज्य द्वारा निर्मित है बल्कि एक कानून किसी प्राधिकृत सत्ता द्वारा लागू नही किया जाए तो भी कानुन है, यदि वह किसी शाश्वत नैतिक मूल्य पर आधारित हो। इस विचार से ज्ञात होता है कि प्राकृतिक विधि सिद्धान्त के सन्दर्भ में कानून की धारणा अत्यन्त व्यापक है। नैसर्गिक, परम्परा में कानून को 'नैतिकता' के एक भाग के रूप में स्वीकार करते हुए कानून व नैतिकता में सम्प्रन्यात्यक सम्बन्ध को स्वीकार किया गया है। वस्तुतः

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 8 Issue 4, April- 2018
ISSN(o): 2249-7382 | Impact Factor: 6.939 |**Thomson Reuters Researcher ID: L-5236-2015**

इस सम्बन्ध का उपयुक्त निरूपण ही विधि दर्शन की सबसे जटिल समस्या रही है, जिस पर आज भी निरन्तर चिंतन हो रहा है। वस्तुतः प्लेटो से लेकर काँट तक के तमाम पश्चिमी दार्शनिक नैसर्गिक विचार परम्परा के दार्शनिक ही कहे जा सकते हैं, व्योंकि ये सभी दार्शनिक यह मानते हैं कि मानव निर्मित कानूनों से परे भी कोई आदर्श कानून है, जो मानव निर्मित कानूनों की वैधता एवं मूल्यांकन के लिए कसौटी दे सकता है। यह आदर्श कानून या तो विवेक से ग्राह्य है या दैवी प्रकाशन के माध्यम से ग्राह्य हो सकता है। इसी मान्यता से सम्बद्ध दूसरी मान्यता यह होगी कि कानून मनुष्य के सामाजिक जीवन को नियन्त्रित करने वाली कई संघटनाओं में से एक संघटना है और इसी रूप में देखी और समझी जानी चाहिए। तीसरे, ये सभी दार्शनिक कानून के स्वरूप पर चिंतन के लिए आनुभाविक पद्धति को अस्वीकार करते हैं और इनमें से अधिकांश दार्शनिक दर्शन की परम्परा में बुद्धिवादी दार्शनिक समझे जा सकते हैं। चौथे, इन सभी दार्शनिकों के लिए कानून की समस्या कानून के सारतत्त्व को खोजने की समस्या है।

कानूनी चिन्तन की इस विचारधारा के विरोध में 19वीं शताब्दी में बेन्थम और ऑस्टीन ने कानून के स्वरूप पर चिंतन करते हुए एक नए दृष्टिकोण को सम्मुख रखा जिसे विधिक प्रत्यक्षवादी विचार कहा जाता है। ह्यूम के अनुभववाद से प्रेरित इन विचारकों ने कानून के बारे में तथ्यात्मक और मूल्यात्मक प्रश्नों को भिन्न करके देखने की चेष्टा की। ऑस्टीन के अनुसार ''कानून क्या है? यह एक प्रश्न है। कानून क्या होना चाहिए?, यह दूसरा प्रश्न है। कोई कानून वैध है या नहीं? यह एक प्रश्न है और वह कानून किन्हीं नैतिक मापदण्डों के अनुकूल है या नहीं? यह दूसरा प्रश्न है।'' ऑस्टीन के अनसार कानून जिस रूप में किसी राज्य में स्थापित है उसका अध्ययन विधि दार्शनिकों को करना चाहिए। ऑस्टीन और उनकी विचारधारा के समर्थक जैसे बेन्थम, केल्सन, हार्ट आदि दार्शनिकों ने कानून जिस रूप में स्थापित है, उस पर विचार किया और पद्धति के रूप में सम्प्रत्यात्मक व भाषायी विश्लेषण की पद्धति को अपनाया। इन दार्शनिकों की यह मान्यता है कि कानून जैसा स्थापित है, उसी रूप में उसके सार और उसके आकारिक स्वरूप पर विचार किया जाना चाहिए। कानून सम्बन्धी तमाम प्रश्नों को कानून तन्त्र के क्षेत्र में रहकर ही तय किया जाना चाहिए। इस मान्यता को ऐसे भी रखा जा सकता है कि कानून अपने आप में एक स्वायत्त तन्त्र है जो स्वयं अपने ही नियमों की वैधता या अस्तित्व की शर्तों की कसौटी प्रदान करता है। इसलिए कानून का अध्ययन ऐसे नियमों का अध्ययन है जो राज्य द्वारा निर्मित है तथा न्यायालयों द्वारा मान्य एवं प्रायोज्य है।

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 8 Issue 4, April- 2018
ISSN(o): 2249-7382 | Impact Factor: 6.939 |**Thomson Reuters Researcher ID: L-5236-2015**

संदर्भ सूची

1. पॉलिटिकल थ्योरीज ऑफ मिडिलएज (सम्पादित मेटलेण्ड) पृ. 9ए 73

2. सन्त एक्विनास – सुम्मा थ्योलोजिका, अनु. फादर्स ऑफ डोमीनियन प्रोकिन्स, लन्दन, 1913. 1925,

3. सन्त एक्विनास – सुम्मा थ्योलोजिका, अनु. जे.जी.डाउसन, 1974ुअण 91

.....